संस्कृत बी० ए०, एम० ए०, पी-एच० डी०, शास्त्री
आचार्य छात्रोपयोगी

साहित्य लहरी

लेखक :
पं० जमीतारामात्मज कवि तार्किक
ज्योतिष शास्त्र निष्णात पं० ज्ञानचन्द्र शर्मा
वेदान्त शास्त्री

Publishers
Sky Lark Photo Studio
19B/1, New Market, Near Liberty Cinema
... ohtak Road, NEW DELHI-5 (India)
Price : 150 Paise

पं० जमीतारामात्मज कवि तार्किक ज्योतिष
शास्त्र निष्णात पं० ज्ञानचन्द्र शर्म्मा
वेदान्त शास्त्री

नन्दिकेश्वर ई० पू० 300

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में प्राचीन आचार्यों की गणना करते हुए कहा है कि नन्दिकेश्वर रस विषय[1] के पहले आचार्य थे। कुछ ग्रन्थों में इनको अन्य विषयों का आचार्य भी माना है। रतिरहस्य और पंचसायक ग्रन्थों में इन्हें कामशास्त्र Erotics का आचार्य बतलाया है। संगीतरत्नाकर के रचयिता शारंदेव ने इन्हें संगीत का आचार्य माना है। नन्दिकेश्वर के नाम से योगतारावली, नन्दिकेश्वरतिलक प्रभाकरविजय, लिंगधारणचन्द्रिका, आदि परस्पर विरोधी सम्प्रदायों से सम्बन्ध रखने वाले अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। मद्रास की खोज रिपोर्ट में नन्दिकेश्वर के नाम से तललक्षण तथा तालादिलक्षण ग्रन्थों की चरचा हुई है। इस दृष्टि से ऐसा जान पड़ता है कि उन्हें ताल (वाद्यसंगीत) विषय अत्यन्त प्रिय था। उन्हें तंत्र, पूर्वमीमांसा, तथा लिंगायत शैव सिद्धान्तों का अनुयायी बताया जाता है। वह शिव के अवतार थे और कैलाश पर रहते हुए उनका इन्द्र के साथ संवाद हुआ ऐसा वर्णन मिलता है। दक्षिण में नन्दिकेश्वर को एक देवता के रूप में पूजा जाता है। उनका कथन है कि बिना रस[2] के कोई भी नाट्यगत अर्थ प्रवर्तित नहीं होता। कवि की रचना जहाँ तक हो

---

1. रसाधिकारिक नन्दिकेश्वरः। रूपकनिरूपणीयं भरतः
   इसकी पुष्टि अभिनव भारती से भी होती है।
2. यथा बीजाद् भवेत् वृक्षो वृक्षात् पुष्पं फलं ततः।
   एवं मूलं रसाः सर्वे तेभ्यो भावाः प्रवर्तिताः ॥ भरतसूत्रे

सके निर्दोष[1] होनी चाहिए । तभी कवि और उसका काव्य यश वाला हो सकता है अन्यथा नहीं । व्याकरण शास्त्र तो शब्द की Correctness शुद्धि और अशुद्धि को बतलाता है । पर अलंकार शास्त्र शब्द की योग्यता Fitness को बतलाता है इसीलिए इसे राजशेखर ने वेद का सातवाँ अंग माना है और कई आचार्य अलंकार शास्त्र को व्याकरण की पूंछ [3] मानते हैं पर यथार्थ में इस शास्त्र की उपादेयता व्याकरण से भी अधिक है किसी कवि ने कहा है कि शब्द के यथार्थ रूप के प्रयोग को अलंकारिक विद्वान[4] Rhetoric ही जान सकता है । यह सम्भवतः दाक्षिणात्य थे । शारदातनय के भावप्रकाशन के अनुसार नन्दिकेश्वर ने शिव की आज्ञा से नाट्यवेद की शिक्षा ब्रह्मा को दी । ब्रह्मा ने भरत और उनके पाँच शिष्यों को उसमें दीक्षित किया । रामकृष्णकवि ने नन्दिकेश्वर तथा तंडु को एक ही व्यक्ति माना है उनके मतानुसार नन्दिकेश्वर ने नन्दिकेश्वर संहिता की रचना की जिसका अब केवल पात्र सम्बन्धी परिच्छेद मिलता है वह सम्भवतः अभिनयदर्पण है । महामुनि भरत को नाट्य शास्त्र की प्रेरणा नन्दिकेश्वर से मिली थी । नाट्यशास्त्र में कहा गया है । कि तंडु अपर नाम नन्दिकेश्वर ने अभिनय की शिक्षा भरत को दी थी ।

भरतमुनि ई० 200 पूर्व

अलंकारशास्त्र में नन्दिकेश्वर के बाद उपलब्ध ग्रन्थों में भरत नाट्य शास्त्र ही सबसे प्राचीन है । इस में कोई सन्देह नहीं । क्योंकि

---

1. निर्दोषं गुणवत् काव्यमलंकारैरलंकृतम् ।
   रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्ति प्रीतिं च विन्दति ॥ कविकण्ठाभरणे
   तदल्पमपितोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथञ्चन ।
   स्याद् वप्रः सुन्दरमपि श्वत्रेणैकेन दुर्भगम् ॥ काव्यादर्शे
3. व्याकरणस्य पुच्छम्
4. शक्तिं भजन्ति सरला लक्षणां चतुरा जनाः
   व्यंजनां नर्ममर्मज्ञाः कवयः कमनाजनाः । त्रिवेणिकायाम्

रसनिरूपण पहले पहल इसी में मिलता है और अलंकार शास्त्र के दूसरे भी विषय इस में[1] प्रतिपादित हैं । काव्यप्रकाश में उद्धृत भरतनाट्यशास्त्र का[2] सूत्र जो रस के जन्म के विषय को प्रतिपादन करता है और जिस की व्याख्या भिन्न भिन्न भट्टलोलट, शंकुक, भट्टनायक, और अभिनवगुप्तपादादि आचार्य्य भिन्न भिन्न प्रकार से करते हैं । उस सूत्र से ज्ञात होता है कि यह भरत नाट्यशास्त्र पहले पहल सूत्रों में था । उस के बाद किसी ने इस को छदोबद्ध किया । भरत के विषय में विद्वानों का मत है कि यह कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं इस को पौराणिक मानना ही समुचित है । नटविशेष कुशीलव ही भरत कहलाते थे, पर दूसरे विद्वान् ऐसा नहीं मानते वह भरत को व्यक्ति विशेष मानते हैं । इस उपलब्ध नाट्यशास्त्र में 37 अध्याय हैं और श्लोक संख्या 5000 हजार के लगभग है । इसमें गद्य भी है । थोडे श्लोक आर्य्या तथा अन्य छंदों में भी हैं । ये आर्याएं सूत्र के अनुसार रची गई हैं ऐसा उसी में इस के आदि में कहा है कि नाट्यशास्त्र पंचम वेद है । जिस को ब्रह्मा ने भरत को सिखाया था । इस नाट्यशास्त्र की 9 टीकयें थीं ऐसा निर्देश मिलता है पर प्रायः आज कल अभिनवगुप्त की अभिनवभारती ही सर्वत्र उपलब्ध है ।

भामह ई० 500

इन का विरचित अलंकार का प्रसिद्ध ग्रन्थ काव्यालंकार है अति प्राचीन आलंकारिकों में इन की गणना की जाती है इन के विषय में विशेष कुछ ज्ञान नहीं होता परंतु काव्यालंकार के अन्तिम श्लोक से ज्ञात होता है कि इन के पिता का नाम रक्रिलगोमिन् था । प्राचीन काल में यह शब्द बौद्धों में विशेष प्रयुक्त होता था और ग्रन्थारम्भ में इन्होंने सार्वसर्वज्ञ का वर्णन किया है । इन कारणों से अनेक विद्वान इन को

1. न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न साविद्या न सा कला ।
   न तद् योगो न तद् कर्म नाट्येऽस्मिन् यन् न दृष्यते ॥
2. विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगत् रसनिष्पत्तिः

बौद्ध मतावलम्बी मानते हैं। किन्तु इन के ग्रंथ में जो अनेक कथाओं का निर्देश मिलता है वह बौद्ध ग्रन्थों का न होकर रामायण और महाभारत आदि प्राचीन ग्रथों के हैं। इन के ग्रन्थ में वैदिक यज्ञ यागादि की वड़ी प्रशंसा की गई है और सोमपान की स्तुति भी मिलती है इसलिये अन्य विद्वान् इन को वैदिक धर्मावलम्बी मानते हैं। इन के पिता के नाम[1] से मालूम होता है कि यह काश्मीर निवासी थे। इन का एक मात्र ग्रन्थ काव्यालंकार में 6 परिच्छेद हैं। और कुल श्लोक 400 हैं। यह ग्रन्थ प्रायः अनुष्टुप् में ही विरचित है बीच बीच में कहीं कहीं अन्य छंद भी मिलते हैं। भट्टोद्भट्ट ने भामह के काव्यालंकार पर विवरण नाम की टीका लिखी। वृत्तरत्नाकर में भामह के नाम से कई श्लोक उद्धृत हैं। इस से ज्ञात होता है कि भामह विरचित छंद का कोई ग्रन्थ अवश्य था जो सम्प्रति अनुपलब्ध है।

इस के षष्ठम् परिच्छेद में 60 श्लोक हैं और व्याकरण की अशुद्धियों से वचने का उपदेश किया गया है। इसलिये यह परिच्छेद वड़ा ही उपयोगी है

दण्डी ई० 600

आचार्य दण्डी संस्कृत के प्रथम गद्यकार हैं। दण्डी सम्भवतः एक उपाधि नाम था। उनका वास्तविक नाम अविदित है। उनके देश काल के बारे में तो कुछ प्रामाणिक रूप से तो नहीं कहा जा सकता पर इतना तो स्पष्ट रूप से सिद्ध हो चुका है कि वह दाक्षिणात्य और सम्भवतः विदर्भ देशीय (बरार निवासी) थे।[2] दण्डी को तीन ग्रन्थों का प्रणेता बताया गया है इसका आधार शारंगधर-पद्धति में दिए

---

1. अवलोक्य मतानि सत्कवीनां, अवगम्य स्वधिया च काव्वलक्ष्म।
सुजनावगमाय भामहेन ग्रथितं रक्लिगोमि सूनुनेदभ्॥

2. त्रयोऽग्नयस्त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयो गुणाः।
त्रयो दण्डिप्रवन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥

गए राजशेखर का वह श्लोक है जिसमें दण्डी के तीन प्रबन्धों को, तीन अग्नि, तीन देव, तीन वेद और तीन गुणों के समान तीन लोकों में विश्रुत बताया गया है। (1) काव्यादर्श (2) दशकुमारचरित और (3) मल्लिकामारुत। कुछ दिन पहले मल्लिकामारुत को दण्डी का तीसरा ग्रन्थ माना जाने लगा परन्तु आधुनिक अनुसन्धानों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि उक्त नाटक दण्डी का न होकर मालाबार के किसी उद्दण्डरँगनाथ (1500 ई०) कवि का है दण्डी का तीसरा ग्रन्थ गद्यकाव्य अवन्तिसुन्दरीकथा माना गया है। काव्यादर्श का प्रसिद्ध टीकाकार जंघाल अपनी टीका में अवन्तिसुन्दरी नामक[1] आख्यायिका का हवाला दे चुका है। इस महाकवि का विरचित अलंकार शास्त्र का ग्रन्थ काव्यादर्श बहुत प्रसिद्ध है। इसके चार परिच्छेद हैं। इसकी रचना अनुष्टुप् में है। श्लोक संख्या 660 से 663 मिलती है। इस पर एक कुसुमप्रतिमा नामक टीका पंडित नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य प्रणीत लाहौर से प्रकाशित हुई है। इनका दूसरा ग्रन्थ दशकुमार चरित तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। (1) पूर्वपीठिका जिसमें 5 उच्छ्वास हैं। (2) दशकुमारचरित जिसमें 8 उच्छ्वास हैं। (3) उत्तरपीठिका। कई विद्वानों के मत में दशकुमारचरित ही दण्डी की वास्तविक रचना मानी जाती है।

इतना तो स्पष्ट है कि आरम्भ में दण्डी ने सम्पूर्ण दशकुमार चरित की रचना की होगी परन्तु किसी कारणवश इस ग्रन्थ का आदि और अन्त भाग नष्ट हो गया होगा इस पर दण्डी के किसी भक्त ने जो मूल ग्रन्थ की शैली और कथा से परिचित होगा उसने पूर्व और उत्तर पीठिका जोड़ कर ग्रन्थ को पूर्ण बना दिया। सम्भव है कि दण्डी को अपनी कृति में गुणाढय की वृहत्कथा से प्रेरणा मिली हो। इसमें दश राजकुमार अपने अपने पर्यटनों, विचित्र अनुभवों तथा पराक्रमों का मनोरंजन वर्णन करते हैं। दण्डी सुभग एवं मनोरम

1. आख्यायिकोपलब्धार्था, प्रबन्धकल्पना कथा

वैदर्भी गद्य शैली के आचार्य कहे जाते हैं। वह अनुप्रासालंकार के बड़े प्रिय थे। किसी[1] आलोचक ने दण्डी को ही एक मात्र कवि बतलाया है। एक दूसरे[2] आलोचक ने कहा है कि बाल्मीकि के प्रादुर्भाव के बाद कवि शब्द एक वचन में प्रयुक्त हुआ करता था। व्यास के बाद द्विवचन में तथा दण्डी के बाद बहुवचन में होने लगा। दशकुमार चरित के अवलोकन से पता चलता है कि दण्डी एक सम्पन्न व्यक्ति थे उन्हें सभी प्रकार के सांसारिक अनुभव प्राप्त किये थे।

दण्डी ने काव्यादर्श के मंगलाचरण में सरस्वती को सर्वशुल्का ऐसा कहा है पर कर्णाटक निवासिनी विजयांका की प्रशंसा की गई है। उसे सरस्वती के समान कहा गया है और वैदर्भी मार्ग की रचना में कालिदास के समान है और उसकी आकृति नील कमल के समान श्याम अर्थात (सरस्वती का वर्णन श्याम है) ऐसा सूक्तिमुक्तावली में तथा शारंगधर पद्धति में 189 श्लोक संख्या पर राजशेखर के नाम से निम्नलिखित पद उद्धृत किया गया है।

इनके जीवन चरित के विषय में अवन्तिसुन्दरकथा में कुछ कहा है कि यह किरातार्जुनीय के कर्ता महाकवि भारवि के प्रपोत्र थे इन के पिता का नाम वीरदत्त था यह दार्शनिक थे। दण्डी की माता का नाम गौरी था। दण्डी के माता पिता बाल्यावस्था ही में मर गये थे। इस का निवास स्थान कांचीपुरी थी

---

1. कविर्दण्डी-कविर्दण्डी कविर्दंडी न संशयः
2. जाते जगति बाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।
   कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वपि दण्डिनी ॥
3. सरस्वतीव कार्णाटी विजयांका जयत्सौ।
   या वैदर्भगिरां वाचः कालिदासादनन्तरम् ॥
   नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता।
   वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुल्का सरस्वती ॥

किसी किंवदन्ती से पता चलता है कि पल्लव राजा के पुत्र को शिक्षा देने के लिए दण्डी ने काव्यादर्श की रचना की थी।

उद्भट ई० 800

उद्भट काश्मीर के राजा जयापीड़ का आश्रित कवि था। यह राजा अन्त में ब्राह्मणों का द्वेषी हो गया था इसका विरचित अलंकार का प्रसिद्ध ग्रंथ काव्यालंकारसंग्रह या अलंकारसंग्रह है। यह स्वयं काश्मीरी था और वामन का समकालिक था। वामन जयापीड़ा के मंत्रियों में से था। उद्भट ने काव्यालंकारसंग्रह में अपने विरचित कुमारसम्भव काव्य के ही श्लोक उदाहरण के रूप में दिए हैं। परन्तु यह कुमारसम्भव काव्य उपलब्ध नहीं है। यह कालिदास के कुमार सम्भव से भिन्न है पर वर्णन शैली उसी के सदृश है इस काव्यालंकार संग्रह में 6 वर्ग हैं कुल कारिकाएं 79 हैं जिनमें 41 अलंकार हैं और 100 के करीब उदाहरण हैं। यह ग्रन्थ भामहविवरण का संक्षेप है। इस ग्रन्थ के प्रचार के बाद भामह का काव्यालंकार पठन पाठन से उठ गया। उद्भट का यह ग्रन्थ अलंकार मार्ग का प्रस्थापक माना जाता है। यह पहला लेखक है जिसने शान्त रस को नवम रस माना है। इसका पहला टीकाकार प्रतिहारेन्दुराज है जो मुकुलभट्ट का शिष्य था। यह कोंकण का ब्राह्मण था इसने काश्मीर में विद्याध्ययन किया था। इस पर दूसरी टीका राजानक तिल की उद्भटविवेक और तीसरी टीका उद्भटालंकारविवृत्ति किसी अज्ञात नामा कवि की है।

उद्भट ने एक टीका ग्रन्थ भी लिखा था भामह विवरण। इसने लघु वृत्ति नाम की टीका लिखी और इसमें अपने गुरु मुकुल भट्ट की बड़ी प्रशंसा की है। इस पुस्तक की प्रति प्रतिहारेन्दुराज की टीका सहित जैसलमीर (राजस्थान) से प्राप्त हुई।

---

1. विद्वान् दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः।
   भट्टोऽभूद्र उद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः॥

वामन ई० 800

इसका विरचित अलंकार का काव्यालंकारसूत्र और उसकी वृत्ति कविप्रिया है[1] यह काश्मीर के राजा जयापीड़ का आश्रित कवि और मंत्री[2] भी था। वामन दण्डी के मन्तव्यों का बहुत घनिष्ट अनुयायी था यह रीति[3] मार्ग का प्रवर्तक माना जाता है उसने रीतियों को तीन भागों में विभक्त किया (1) वैदंभी (2) गौडी (3) पांचाली। दण्डी के तुल्य उसने भी रस और नाट्यशास्त्र पर विवेचन नहीं किया। यह उद्भट का समकालीन और प्रतिस्पंधी था। इसका ग्रन्थ काव्यालंकारसूत्र और उसकी वृत्ति कविप्रिया है। इस ग्रन्थ के तीन भाग सूत्र-वृत्ति और उदाहरण हैं। यह ग्रन्थ सूत्र ग्रन्थ की सरणि पर लिखा गया है इसके पाँच विभाग, अधिकरण कहे गये हैं और कुल अध्याय 12 हैं। सूत्र संख्या 319 हैं। इनका रीति संप्रदाय लुप्त हो चला था जिसका पुनरुद्धार मुकुलभट्ट ने ई० 925 में किया इस ग्रन्थ पर गोपेन्द्रतिप्पभूपाल की कामधेनू नाम की टीका प्रसिद्ध है भट्ट गोपाल भी इसका टीकाकार था सहदेव की टीका भी इस पर मिलती है।

रुद्रट ई० 850

इनका विरचित काव्यालंकार नाम का अलंकार ग्रन्थ है। रुद्रट का दूसरा नाम शतानन्द था इनके पिता का नाम भट्ट[4] वामुक था यह सामवेदी था कश्मीर इसका निवास-स्थान था इनका एक ही ग्रन्थ

---

1. प्रणम्य परमं ज्योतिर्वामनेन कविप्रिया।
   काव्यालंकारसूत्रानां स्वेषां वृत्तिर्विधीयते ॥ वामनः
2. बभूवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मंत्रिणः—राजतरंगिनी 4-497
3. रीतिरात्मा काव्यस्य।
4. शतानन्दापराख्येन भट्टवामुकसूनुना।
   साधिनं रुद्रटेनेदं सामजा धीमतां हितम् ॥

उपलब्ध है काव्यालंकार[1] इन्होंने ग्रन्थ के आदि में गणेश और गौरी की और अन्त में भवानी, मुरारि और गणेश की स्तुति की है। इसमें अलंकारों का वर्गीकरण वैज्ञानिक ढंग से किया गया है इसमें 16 अध्याय हैं। इसकी रचना आर्य्या छंद में है इसके सम्पूर्ण उदाहरण कवि विरचित हैं कुल पद्य 734 हैं इस पर शालिभद्र के शिष्य श्वेताम्बर जैन नामी साधु की (1068 ई०) विरचित टीका है। इससे भी प्राचीन टीका वल्लभदेव की (950 ई०) है इसकी तीसरी टीका आशाधर जैन की (1240 ई०) है।

आनन्दवर्द्धन ई० 850

यह ध्वनि मार्ग के प्रवर्तक माने जाते हैं। अलंकार शास्त्र में यह उतने ही पूज्य माने जाते हैं जैसा व्याकरण में पाणिनी और वेदान्त में बादरायण। रसगंगाधरकार पंडितराज जगन्नाथ ने इनको अलंकार सरणि व्यवस्थापक कहा है। काश्मीर इनका निवास स्थान था। राजरानक इनकी उपाधि थी। इनके पिता का नाम नोण था यह[1] अवन्तिवर्मा का सभापंडित था इनके जीवन में ही इनकी बड़ी ख्याति हो गई थी ऐसा[2] जह्लण अपनी सूक्तिमुक्तावलि में लिखता है ध्वन्यालोक इनका सब से प्रसिद्ध ग्रन्थ है इसके तीन भाग हैं (1) कारिका (2) वृत्ति (3) उदाहरण। कारिका और वृत्ति दोनों भागों के निर्माता स्वयं आनन्दवर्द्धनाचार्य्य ही हैं उदाहरण भाग में उन्होंने कुछ तो अपने बनाये विषमबाणलीला और अर्जुनचरित आदि ग्रन्थों से दिये हैं। परन्तु अधिकांश उदाहरण अन्य प्रसिद्ध कवियों के ग्रन्थों से दिये हैं। महिमभट्ट, जल्हण, राजशेखर, खेमेन्द्र विश्वनाथादि

---

1. मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ।। राजतरंगिणी

2. ध्वनिनाऽतिगंभीरेण काव्यतत्त्वनिवेशिना।
आनन्दवर्द्धनः कस्य नासीदानन्दवर्द्धनः ।। जह्लणसूक्तिमुक्तावल्याम्

कारिका भाग और वृत्ति-भाग के रचयिताओं को भिन्न भिन्न नहीं मानते हैं पर लोचनकार ध्वनिकार और वृत्तिकार को पृथक् बतलाते हैं। कारिका भाग के निर्माता कोई सहृदय नामक व्यक्ति और वृत्ति भाग के रचयिता स्वयं आनन्दवर्द्धन हैं। अपने मत की पुष्टि के लिये वे ध्वन्यालोक के प्रथम तथा अन्तिम श्लोक में सहृदय पद के प्रयोग से। पर स्वयं आनन्दवर्द्धन ने दोनों भागों का कर्ता अपने आप को बताया है। इस ग्रन्थ पर दो टीकायें मिलती हैं एक अभिनवगुप्त विरचित लोचन दूसरी टीका चंद्रिका है। यह टीका लोचन से पहले लिखी गई थी और उसके रचयिता कोई अभिनवगुप्त के पूर्वज ही थे। अभिनवगुप्त ने लोचन में जगह-जगह उसका खण्ड किया है। चंद्रिका टीका के होने पर भी अभिनवगुप्त ने जो लोचन टीका लिखी इसका कारण दिखलाते हुए लोचनकार ने लिखा है कि[1] (लोचन) आँख के विना (चंद्रिका) चाँदनी नहीं भाती। इस कथन में प्रकारान्तर से लोचन की विशेषता सूचित की है। ध्वन्यालोक में कुल कारिकायें 129 हैं और 4 उद्योतों में विभक्त हैं। इनके और ग्रन्थ (1) अर्जुनचरित, (2) विषमबाणलीला (3) धर्मकीर्ति के प्रमाण-विनिश्चय की टीका धर्मोत्ता (4) देवी शतक (5) और तत्त्वा-लोक हैं।

राजशेखर ई० 900

राजशेखर अपने समय के सिद्धहस्त नाटककार, प्रौढ़ महाकवि, गम्भीर मीमांसक, और चतुरस्र विद्वान् थे। यह कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल के विद्यागुरु थे। उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र महीपाल

---

1. किं लोचनं विनालोको भाति चन्द्रिकयापि हि।
   अतोऽभिनवगुप्तोऽत्र लोचनोन्मीलनं व्यधात्।

के भी सभा कवि रहे। राजशेखर महाराष्ट्र निवासी थे और यायावर वंश में उत्पन्न हुए। यायावर का अर्थ है जो निरन्तर चलने वाले हों। यह गृहस्थ या बानप्रस्थी सन्त होते थे, सन्यासी नहीं। राजशेखर अकाल जलद के प्रपौत्र और दुर्दुक के पुत्र थे। उनकी माता का नाम शीलवती था। इनके पिता किसी राजा के मन्त्री भी थे। अकाल जलद इस यायावर कुल के अति प्रसिद्ध व्यक्ति प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि राजशेखर ने अपने पिता का अतिसाधारण परिचय देते हुए और पितामह के बारे में मौन रहकर अपने प्रपितामह का नाम बड़े गौरव से लिया है। यह अकाल जलद कौन थे इन्होंने क्या क्या लिखा है यह पता नहीं चलता पर शारंगधरपद्धति में एक पद्य अकाल जलद के नाम से मिलता है। जिसका भावार्थ यह है कि जिस सूखे सरोवर में मेंढक अपनी बिलों में पड़े-पड़े मृत प्राय हो रहे हैं ; कछुए शीतलता प्राप्त करने के लिए पृथ्वी में धंसे जा रहे हैं, बड़े-बड़े मत्स्य गहरे कीचड़ में छट फटाकर मूर्छित हो रहे हैं। ऐसे अवसर पर अकाल जलद (मेघ) ने आकर सूखे सरोवर में ऐसी वर्षा की कि अब उसमें जंगली हाथियों के झुंड गले तक डूबकर जल पी रहे हैं। यहां श्लेश और अन्योक्ति से अकाल जलद का नाम है।

राजशेखर विदंभ देश के रहने वाले थे जो आज कल बरार के नाम से हैदराबाद तक विस्तृत है। अवन्तिसुन्दरी नामक एक चौहान जाति की विदुषी महिला से इनका विवाह हुआ था। यह बालकवि और कविराज की उपाधि सें प्रसिद्ध थे और यह अपने

भेकैः कोटरशायिभिर्मृतमिव क्ष्मान्तर्गतं कच्छपैः
पाठीनैः पृथु-पंक-कूट-लुठितैर्यस्मिन् मुहुर्मूर्छितम्।
तस्मिंच्छुष्कसरस्यकालजलदेनागत्य यच्चेष्टितम्
येनाकण्ठनिमग्न-वन्यकरिणां यूथैः पयः पीयते॥

को[1] बाल्मीकि का अवतार कहते थे। क्योंकि यह एक दैवज्ञ का कथन था। यह बड़े बिलासी थे। स्वयं कहते हैं कि कोई[2] प्रभुदेवी नामक कवियित्री लाटदेश की रहने वाली मेरी प्रणयिनी के मर जाने के बाद भी वह हृदय से नहीं छूटती। इन्होंने 6 ग्रन्थों की रचना की जिनमें ५ तो उपलब्ध हैं। (1) कर्पूरमंजरी, यह उनकी सर्वप्रथम प्राकृत नाटिका है यह उन्होंने अपनी पत्नी की प्रार्थना पर बनाया था। इसमें राजकुमार चण्डपाल और राजकुमारी कर्पूरमंजरी के विवाह का वर्णन है। इसमें अद्भुत रस का उपपादन है। (2) बालरामायण 10 अंकों का[3] महानाटक है। इसमें रामायण की कथा का वर्णन है। (3) बालभारत यह नाटक खण्डित है केवल 2 अंक उपलब्ध हैं। (4) विद्धशालमंजिका यह चार अंकों की नाटिका है। इसमें विद्याधरमल्ल ने दो राजकुमारियों मृगांकावली और कुवलयमल्ल से विवाह किया। (5) हरविलास महाकाव्य उपलब्ध नहीं होता। (6) काव्य मीमांसा 18 अधिकरणों में पूर्ण होने वाले इस महाग्रन्थ का केवल एक ही अधिकरण उपलब्ध होता है। उस एक अधिकरण के 18 अध्याय हैं। राजशेखर ब्राह्मण थे या क्षत्री इसका पता नहीं चलता पर राजा महेन्द्रपाल का उपाध्याय होने के कारण इन्हें ब्राह्मण ही मानना चाहिए।

राजशेखर प्राकृत भाषा को संस्कृत से अधिक कोमल मानते हैं। संस्कृत भाषा कठोर और प्राकृत कोमल है। संस्कृत और प्रकृत

---

1. बभूव बाल्मीकभवः पुरा कविस्ततः प्रपेदे भुविभर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूति रेखया सर्वतते सम्प्रति राजशेखरः॥ बालभारते
2. सूक्तीनांस्मर केलीनां कलानां च विलासभूः।
प्रभुदेवी कविर्लाटी गताऽपि हृदि तिष्टति॥
3. अंकैश्चदशभिधीराः महानाटकमूचिरे। साहित्य दर्पणे 6/223

में उतना ही अन्तर है जितना पुरुष और स्त्री में।[1] प्राकृत प्रकृति सिद्ध मूल भाषा है और संस्कृत उसका परिष्कृत रूप है। प्राकृत के बाद दूसरा स्थान अपभ्रंश का है राजशेखर ने इसे[2] भव्यभाषा कहा है। तीसरा स्थान भूत[3] भाषा या पैशाची का है और इसे सरस रचना कहा है। इसका प्रयोग अवन्ति[4] देश, पारयात्र और दशपुर (मंदसौर) के निवासी अधिक मात्रा में करते हैं। दूसरे दरद देश में बोले जाने वाली भाषा को भूतभाषा कहते हैं। राजशेखर राजाओं के कविदरबार का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि राजसिंहासन के उत्तर की ओर संस्कृत कवि पूर्व की ओर प्राकृतकवि, पश्चिम की ओर अपभ्रश कवि और दक्षिण की ओर पैशाची भाषा के कवियों के स्थान निर्धारित थे। राजशेखर[5] शार्दूलविक्रीडित छंद के बड़े प्यारे थे।[6] राजशेखर ने बड़े विलास का जीवन व्यतीत करने के बाद वृद्धावस्था में काशी जाने का विचार किया। इनकी पत्नी अवन्ति सुन्दरी अवन्ति देश की प्रतीत होती है।

---

1. यद् योनिः किल संस्कृतस्य
2. सुभव्योऽपभ्रंशः
3. सरसरचनं भूतवचनम्
4. आवन्त्याः पारियात्राः सह दशपुरजैर्भूतभाषां भजन्ते।
   अन्ये दरददेशस्य भाषां भूत भाषा कथन्ति॥
5. शार्दूलक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः।
   शिखरीव परं वक्रैः सोल्लेखैरुच्चशेखरः॥
6. कार्णाटी दशनांकितः शित महाराष्ट्री कटाक्षक्षतः
   प्रौढ़ान्ध्री-स्तन पीड़ितः प्रणयिनी भ्रू-भंगवित्रासितः।
   लाटी वाहुविवेष्टितश्च मलयस्त्री तर्जनी तर्जितः,
   सोऽयं सम्प्रति राजशेखरकवि वाराणसी वाञ्छति॥

मुकुल भट्ट ई० 920

इनका विरचित अभिधावृत्तिमातृका अलंकार का ग्रन्थ है। इसके पिता का नाम भट्टकल्लट था जो काश्मीर के राजा अवन्ति वर्मा का सभा पण्डित थे ऐसा[1] राजतरंगिणी में कहा है माणिक्य चन्द्र के काव्य प्रकाश संकेत में मुकुल भट्ट का निर्देश बार-बार मिलता है। इनका अभिधावृत्तिमातृका एक छोटा सा ग्रन्थ 15 कारिकाओं का है। इन कारिकाओं की वृत्ति भी कर्त्ता ही की रची हुई है। इसमें लक्षणा का प्रतिपादन विस्तृत रूप से है। काव्य प्रकाश का लक्षणा निरूपण इसी ग्रन्थ के आधार पर किया गया है। मुकुलभट्ट मीमांसा शास्त्र के एक प्रकाण्ड विद्वान थे। यह ग्रन्थ व्यजना वृत्ति तथा ध्वनि का खण्डन करता है।

भट्ट तौत ई० 960

इनका विरचित काव्यकौतुक नाम का अलंकार ग्रन्थ है। पर उपलब्ध नहीं होता।

यह प्रसिद्ध अभिनवगुप्तपादाचार्य के गुरु थे इसने शान्त रस को नवम रस माना है।

भट्टनायक ई० 1000

यह दशम शताब्दी के एक अत्यन्त प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। दुर्भाग्य से उनका एक मात्र ग्रन्थ हृदयदर्पण उपलब्ध नहीं हो रहा सामान्यतः वे ध्वनि विरोधी आचार्य हैं। उनके हृदयदर्पण में ध्वन्य[1] लोक के सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है। फिर ध्वन्यालोक के टीकाकार अभिनवगुप्त ने भट्टनायक के ध्वनि विरोधी सिद्धान्तों का बड़े जोर[2] का खण्डन किया है।

---

1. अनुग्रहाय लोकानां भट्टाः श्री कल्लटादयः।
   अवन्तिवर्मणः काले सिद्धा भुवमवातरन्॥
2. तेन भट्टनायकेन द्विवचनं दूषितं तदगजनिमीलिकयेव।

परन्तु भट्टनायक के इस ग्रन्थ की अनुपलब्धि आज की नहीं बहुत पुरानी जान पड़ती है। भट्ट-नायक के कुछ समय बाद ही 1100 ई० में दूसरे ध्वनि[1] विरोधी आचार्य महिम भट्ट हुए उन्होंने भी भट्ट नायक के समान ध्वन्यालोक के खण्डन में अपना व्यक्तिविवेक नामक ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थ को लिखते समय उन्होंने भट्टनायक के हृदयदर्पण को देखना चाहा जिससे वह अपने ग्रन्थ को और भी अधिक उत्कृष्ट बना सकते परन्तु उस समय भी उनको यह ग्रन्थ नहीं मिला। इससे उनको बड़ा खेद हुआ उन्होंने यह बात व्यक्तिविवेक में कही है। भट्टनायक के सबसे बड़े विरोधी अभिनव गुप्त थे।

अभिनवगुप्त ई० 1000

अभिनवगुप्त ध्वनि समर्थक आचार्य आनन्दवर्धन की परम्परा में हुए। यह कवि और दार्शनिक भी थे ऐसा माना जाता है। यह काश्मीर के एक प्रमुख विद्वान थे। वह स्वयं यद्यपि काश्मीरी ब्राह्मण थे परन्तु उनके पूर्वज सदा काश्मीर के रहने वाले नहीं थे। अभिनवगुप्त के जन्म से 200 वर्ष पूर्व उनके पूर्वज उत्तार प्रदेश के प्रसिद्ध नगर कन्नौज में रहते थे जो उन दिनों एक बड़ा समृद्ध एवं शक्तिशाली साम्राज्य था। उस समय कन्नौज के अधिपति यशोवर्मा थे। यह 800 शताब्दी की बात है। काश्मीर में उस समय ललितादित्य राज्य करते थे। किसी कारणवश काश्मीर के राजा ने कन्नौज पर चढ़ाई की और उस युद्ध में यशोवर्मा मारा गया। उस समय यशोवर्मा के यहाँ अत्रिगुप्त नाम के बहुत बड़े विद्वान् थे। काश्मीर के राजा तो बड़े ही गुणग्राही और विद्वद्जनप्रिय थे इसलिए ललितादित्य अत्रिगुप्त को बड़े आदर पूर्वक अपने यहाँ ले आये और काश्मीर में मकान बनवा दिया और बड़ी जागीर प्रदान की। इन्हीं अत्रिगुप्त के वंश में 200 वर्ष बाद अभिनवगुप्त उत्पन्न हुए।

1. इस ध्वनि की उत्पति वैयाकरणों के स्फोटवाद से हुई है।

अभिनवगुप्त के पिता का नाम चुलुखक और दादा का नाम वराहगुप्त था। भाई का नाम मनोरथ गुप्त था। अभिनवगुप्त का पूरा नाम अभिनवगुप्तपाद था। काव्यप्रकाश के टीकाकार वामन का कहना है कि यह नाम बाद को उनके गुरुओं ने उनको अपने सहाध्यायी बालकों को सताने और डराने की प्रवृत्ति के कारण दिया था। गुप्तपाद का अर्थ है सर्प। यह अपने साथियों के लिए सर्प के समान त्रासदायक थे, इसलिए गुरुओं ने इनका अभिनव गुप्तपाद नाम रख दिया और इसके बाद इन्होंने भी इस गुरुप्रदत्त नाम का व्यवहार कर दिया।

अभिनवगुप्त को विद्याध्ययन का बड़ा व्यसन था। इसने कश्मीर और आस पास के जितने विद्वान् थे, उन सबके पास जाकर विद्याध्ययन किया। इनके भिन्न-भिन्न 20 गुरु थे। इनके गुरुओं के समान इनके ग्रन्थों की भी वड़ी लम्बी सूची है, वह संख्या में 41 हैं। उनकी बाल्यावस्था शरारतों की स्मारक है। उनकी माता का देहान्त उनके बाल्यकाल में ही हो गया था। उनके पिता अपनी स्त्री के वियोग में सन्यासी हो गए। उन्होंने विवाह भी नहीं किया, जीवनभर ब्रह्मचर्य के कठोर व्रत का पालन किया। काश्मीर में श्रीनगर तथा गुलमर्ग के बीच में मगम नाम का एक स्थान है। उस स्थान से पांच मील की दूरी पर भैरव गुफा नाम से एक प्रसिद्ध गुफा है। उसके पास भैरव नाम की एक छोटी सी नदी बहती है। उसके पास एक छोटा सा गाँव है। वह भी भैरब गाँव के नाम से प्रसिद्ध है। अभिनवगुप्त ने अपने जीवन का अन्तिम भाग इस पवित्र वातावरण में व्यतीत किया। अन्तिम समय समीप आने पर वह स्वयं इस गुफा के अन्दर प्रविष्ट हो गए और फिर कभी वापिस नहीं लौटे। उनकी इस अन्तिम दीर्घ यात्रा के समय 1200 शिष्य उनको बिदाई देने के लिए उनके साथ थे। इन्होंने इन्दुराज से ध्वनि

शास्त्र पढ़ा और भट्टतौत से नाट्यशास्त्र । यह काश्मीर के शैवागम के भारी आचार्य थे। इन्होंने भैरवस्तोत्र की रचना की। यह असामान्य टीकाकार थे। भरतनाट्यसूत्र पर अभिनवभारती, ध्वन्यालोक पर लोचन और अपने गुरु भट्टतौत के काव्यकौस्तुभ पर काव्य कौस्तुभविवरण नाम्नी टीकायें लिखीं। दर्शन और तन्त्र पर भी इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे। इन्होंने लोचन[1] में भट्ट नायक पर बड़े कड़े प्रहार किए हैं।

धनंजय ई० 1000

इनका एकमात्र ग्रन्थ दशरूपक है। इसका मुख्यतः सम्बन्ध अलंकार शास्त्रों से न होकर नाट्यशास्त्र से है। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र के वाद इस विषय पर यह सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ कारिका रूप में लिखा गया है। इसमें 300 कारिकायें हैं। ग्रन्थ चार प्रकाशकों में विभक्त है। ग्रन्थ के अन्त में धनंजय ने अपना परिचय देते हुए लिखा है कि धनंजय के पिता का नाम विष्णु था। इन्होंने मालवा के परमार वंश के राजा मुँज, जिसको वाक्पतिराज द्वितीय भी कहा जाता है, इस वंश का सप्तम राजा था। यह बड़ा विद्वान था। इसने चालुक्य वंशीय द्वितीय तैल राजा से 6 बार लड़ाई की और अन्तिम लड़ाई में मारा गया। यह उसकी राजसभा के पंडित थे और वहीं धारा नगरी में रह कर इस ग्रन्थ की रचना की। धनंजय के दशरूपक पर उनके छोटे भाई धनिक ने अवलोक नाम की टीका लिखी।

---

1 तेन भट्टनायकेन द्विवचनं दूषितं तद् गजनिमीलिकयेव।

2 विष्णोः सुतेनापि धनंजयेन विद्वन्मनोरागनिबन्धहेतुः।
आविष्कृतं मुंजमहीशगोष्ठीवैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत् ॥

भोज राज ई० 1018

भोज ने धारा में राज्य किया। वह स्वयं बहुत योग्य विद्वान तथा विद्वानों का आश्रयदाता भी था। उसकी विद्वत्ता का परिचय तो उसके ग्रंथ सरस्वतीकंठाभरण के मंगलाचरण[1] से ही प्रतीत होता है। उसने साहित्य के कई अंगों पर ग्रन्थ लिखे। उसने सरस्वतीकण्ठाभरण नामक दो ग्रंथ लिखे; एक व्याकरण का दूसरा साहित्य का। सरस्वतीकण्ठभरण और शृंगारप्रकाश इनके यह दो काव्य उच्च कोटि के ग्रन्थ हैं। सरस्वतीकण्ठाभरण में पाँच प्रकाश (अध्याय) हैं। शृंगार प्रकाश में 36 अध्याय हैं, इनके पिता का नाम सिन्धुराज था। सरस्वतीकण्ठाभरण में दण्डी के काव्यादर्श के 200 श्लोक आये हैं। प्राचीन कवियों के करीब 1500 श्लोक इसमें उद्धृत हैं। इसकी पाँच टीकायें हैं; जिनमें रलेश्वर मिश्र की रत्नदर्पण नाम की टीका 1400 ई० में तिरहुत के राजा रामसिंह के कहने पर रची गई। भोज संस्कृत का उद्धारक[2] था। वह कहता था कि यदि चाण्डाल विद्वान हो तो वह मेरी नगरी में रहे और मूर्ख ब्राह्मण भी मेरी नगरी से बाहर रहे।

मुंज परमार वंश का सप्तम राजा था। भोज उसका भतीजा था। 1018 ई० में वह गद्दी पर आया और 40 वर्ष तक राज्य किया। यद्यपि उसने कई बार मुसलमानों से युद्ध किये तो भी यह संस्कृत साहित्य

---

1. ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यमित्यास्पदचतुष्टयम्।
   यस्याः सूक्ष्मादि भेदेन वाग्देवीं तामुपास्महे।
2. चाण्डालोऽपि भवेत् विद्वान् यः सः तिष्ठतु मे पुरि।।
   विप्रोऽपि यो भवेन् मूर्खः स पुराद् बहिरस्तु मे।।

वल्लभदेव कृत भोज प्रबन्धे

की उन्नति करने में ही विशेष विख्यात है। धारा में इन्होंने सरस्वती का मन्दिर और एक संस्कृत विश्वविद्यालय भी स्थापित किया। उस सरस्वती मंदिर में बैठकर भोज बड़े बड़े विद्वानों को उपाधियां और प्रमाण पत्र (in time of Convocation) प्रदान किया करते थे। वहाँ आज एक मस्जिद बनी हुई है। भोपाल के पास आग्नेय दिशा में 250 वर्गमील का भोजपुर का तालाब इन्होंने हीं बनवाया था जिसे मुसलमानों ने नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

कुन्तल ई० 1025

इनका विरचित वक्रोक्तिजीवित नाम का अलंकार ग्रन्थ है। इनकी राजानक उपाधि थी और यह काश्मीरी थे। इनके जीवन के विषय में कुछ भी पता नहीं चलता पर अलंकार ग्रन्थों में यह वक्रोक्तिजीवितकार के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह वक्रोक्ति[1] को काव्य का आत्मा मानते हैं। इनका वक्रोक्तिजीवित एक बड़ा प्रौढ़ ग्रन्थ है। इसमें उन्मेष हैं और प्रति उन्मेष में कारिका वृत्ति और उदाहरण हैं। इसमें उदाहरणों की संख्या 500 से ऊपर है। यह वक्रोक्ति सम्प्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं।

गोपालभट्ट ने साहित्यसौदामिनी नामक ग्रन्थ के आरम्भ में कुन्तल की प्रशंसा की है। इनके पुस्तक पर कोई टीका उपलब्ध नहीं होती।

महिमभट्ट ई० 1025

इनका विरचित व्यक्तिविवेक नाम का केवल एक मात्र अलंकार ग्रन्थ है। इनकी राजानक उपाधि थी और यह काश्मीर के निवासी थे। इनके पिता का नाम श्रीधैर्य था और महा कवि श्याम इनका गुरु था। यह अद्भुत तार्किक और आलोचक थे और साथ ही साथ

---

1. वक्रानुरंजिनीमुक्ति शुक इव मुखे वहन्।
   कुन्तलः क्रीडति सुखं कीर्तिस्फटिकपंजरे॥

बड़े भारी अलंकारिक भी थे। ध्वनि[1] सिद्धान्त को उखाड़ फेंकना ही इनके ग्रंथ का उद्देश्य था। इन्होंने प्रसिद्ध आनन्दवर्द्धन का घोर विरोध किया। इनके ग्रन्थ में ध्वनि मार्ग के खण्डन करने का प्रयत्न किया गया है। इन्होंने रस को काव्य की आत्मा माना है और व्यंजना को अनुमान में अन्तर्गत किया। व्यक्तिविवेक के 3 विमर्श हैं। पहले विमर्श में ध्वनि का लक्षण और उसका अनुमान में अन्त-र्भाव दूसरे में अनौचित्य विचार और उसके भेदादि। तीसरे में ध्वन्या-लोक के 40 उदाहरणों का खण्डन। व्यक्तिविवेक पर रुय्यक की एक अधूरी टीका उपलब्ध है। यह अपने मुख्य नाम की अपेक्षा व्यक्ति-विवेककार के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

क्षेमेन्द्र ई० 1028

क्षेमेन्द्र औचित्य[2] सम्प्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं। इन्होंने कविकण्ठाभरण नामक ग्रन्थ लिखा है। इनके पिता का नाम प्रक-शेन्द्र और दादा का सिन्धु था। साहित्य शास्त्र में यह अभिनवगुप्त के शिष्य थे। इन्होंने लगभग 40 ग्रन्थों की रचना की पर वे सब उपलब्ध नहीं होते। इन्होंने विष्णु के दश अवतारों के विषय में अपना ग्रन्थ दशावतारचरित्र लिखा है। अभेद वादियों का कहना है कि यह पहले शैव थे, बाद में सोमाचार्य्य द्वारा वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। क्षेमेन्द्र अपने आपको व्यासदास नाम से लिखते हैं—

---

1. अनुमानेऽन्तर्भावं सर्वस्यैव ध्वनेः प्रकाशयितुम्।
व्यक्तिविवेकं कुरुते प्रणम्य महिमापरां वाचम्॥
व्यक्तिविवेक प्रथम श्लो॰

2. उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते॥

मम्मट 1050 ई०

राजानक मम्मट बड़ा तार्किक एवं आलोचक विद्वान् था। राजानक उपधि ही उच्च सम्मान की सूचक है; जिसको काश्मीर की एक महारानी ने प्रचलित किया था। इन्हें विद्वान् वाक्देवी का अवतार कहते हैं। यह कैय्यट और उव्वट के भाई एवं जैय्यट के पुत्र थे। यह रहने वाले काश्मीर के थे। इनके ग्रन्थ काव्यप्रकाश का वही मान है जो वेदान्त में शारीरिकभाष्य का और व्याकरण में महाभाष्य का। इसकी 142 कारिकायें हैं और सूत्रवत् मानी जाती हैं। इसमें 10 उल्लास हैं। काव्यप्रकाश के अन्तिम श्लोक से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ को मम्मट भट्ट समाप्त नहीं कर सके। मम्मट ने परिकरालंकार तक ही ग्रन्थ रचा। आगे अल्लट भट्ट ने। इसलिए कई टीकाकार[1] मम्मट और अल्लट दोनों को इसका कर्ता मानते हैं। इसकी लोकप्रियता इसी से मालूम होती है कि भारत के भिन्न-भिन्न देशों के विद्वानों ने इस पर 75 टीकायें लिखीं। कई विद्वान कारिका भाग का कर्ता भरतमुनि और वृत्तिभाग के निर्माता मम्मट हैं ऐसा मानते हैं। इस सिद्धान्त का उदय बंगाल देश में हुआ। साहित्य कौमुदीकार विद्याभूषण[2] तथा काव्यप्रकाश की आदर्शनाम्नी टीका के निर्माता महेश्वर ने कारिका भाग भरत मुनि का तथा वृत्ति भाग मम्मट का माना है। इसके विपरीत जयराम अपनी तिलक नामक टीका में इस मत का खण्डन करते हैं। बहुमत यह है कि मम्मट ही कारिका तथा वृत्ति भाग के निर्माता हैं। उन्होंने परिकरालंकार तक ही ग्रन्थ की रचना की फिर उनके देहावसान होने पर थोड़ा सा आगे का भाग

---

1. कृती राजानक मम्मटाल्लटयोः अमरुशतकस्य टीकाकारः अर्जुन देवेन काव्यप्रकाशकारौ इतिद्विवचनं लिखितम्।

2. मम्मटाद्युक्तिमाश्रित्य मितां साहित्यकौमुदीम्।
वृत्तिं भरतसूत्रणां श्रीविद्याभूषणो व्यधात्॥

अल्लट ने बनाया पर बहुमत इसे भी नहीं मानता। वह समग्र काव्य-प्रकाश को ही मम्मट की रचना मानते हैं।

परम्परागत प्रसिद्धि के अनुसार यह नैषधीयचरित के रचयिता श्रीहर्ष के मामा थे किन्तु यह प्रमाद मात्र जान पड़ता है। इन्होंने काश्मीर में ही विद्याध्ययन किया था। जो उस समय काश्मीर साहित्य का केन्द्र और विद्यापीठ था। अलंकार शास्त्र की धारा में दण्डी, राजशेखर, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित और पंडितराज जगन्नाथ को छोड़ शेष सब विद्वान् काश्मीरी थे। उस समय काश्मीर और कन्नौज विद्यापीठ थे। इन दोनों के पतन के बाद काशी विद्यापीठ उन्नत होने लगा। भारतीय साहित्य में सबसे अधिक टीकायें भगवद्गीता पर हैं। इसके बाद जिस ग्रन्थ पर सबसे अधिक टीकाएँ लिखी गईं वह मम्मट का काव्यप्रकाश है। उनमें नैयायिक जगदीश, वैयाकरण नागेशभट्ट मीमांसक कमलाकर भट्ट, वैष्णव बलदेव विद्याभूषण और तांत्रिक गोकुलनाथ हैं। इसके रचनाकाल से 50 वर्ष के भीतर ही जैन साधु माणिक्यचन्द्र ने संकेत नाम की टीका लिखी। काव्यप्रकाश के बारे में यह प्रसिद्ध है कि उसकी टीकायें घर-घर में विद्यमान है पर ग्रन्थ आज भी वैसा ही दुरूह बना हुआ है। सारा काव्यप्रकाश एक ही सूत्र[2] के ऊपर घूम रहा है।

हेमचन्द्र ई० 1090

संस्कृत साहित्य को समृद्ध बनाने में काश्मीर के बाद गुजरात का ही स्थान है। यहां अणहिलपट्टन विद्वानों का केन्द्र था। इस राज्य की स्थापना ई० 746 में हुई। अणहिल गोपाल नामक शिल्पी ने इस स्थान को राजधानी बनाने का परामर्श राजा को दिया। राजाने उसी के नाम पर इसका नाम अणहिल पट्टन रखा। यहाँ बड़े बड़े जैन विद्वान्

---

1 काव्यप्रकाशस्य कृता गृहे गृहे टीकास्तथाप्येष तथैव दुर्गमः।

2 तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।

हुए जिन्होंने संस्कृत साहित्य की रचना की। यहाँ हेमचन्द्र हुए जिनं का जन्म ई० 1090 में गुजरातान्तर्गत धन्धुक ग्राम में एक वैश्य के घर हुआ। यह कई विषयों के विद्वान् थे। इन्हें 21 वर्ष की आयु में 'सूरी' पद मिला, इस प्रसन्नता में इन का शरीर हेम (स्वर्ण) के समान और मुख चन्द्रमा के समान होगया। उसी दिन से विद्वान् इन्हें हेमचन्द्र इस नाम से पुकारने लगे। सूरी पद का महोत्सव बड़ समारोह से नागौर (मारवाड़) में हुआ। इस समय गुजरात का शासक 'जयसिंहसिद्धराज' था, जों उन्हें मित्र और गुरु मानता था। उनसे विरचित ग्रंथ 'सिद्धहेम-शब्दानुशासन के नाम से प्रसिद्ध है प्रतीत होता है कि राजा से इनकी बड़ी मित्रता थी। इन के बाद उनके उत्तराधिकारी कुमरपाल के साथ 30 वर्ष तक इनका वड़ा घनिष्ठ सम्वन्ध रहा। इन्होंने कुमरपाल को जैनधर्म में दीक्षत कर लिया जो पहले शैव धर्मावलिम्बी था। इसलिए कुमारपाल और उसका इकलौता दोहता प्रतापमल्ल दोनों जैनी होगये। इन्हों ने 84 वर्ष की आयु पाई। साहित्य शास्त्र पर इन्हों ने काव्या-नुशासन नाम का ग्रन्थ लिखा। यह ग्रन्थ सूत्र पद्धति पर लिखा गया है। इसके ऊपर विवेक नामक वृत्ति भी इन्होंने लिखी। यह ग्रन्थ प्रायः संग्रह ग्रन्थ सा है। हेमचन्द्र ने यह ग्रन्थ अपने सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन के बाद लिखा था।

रामचन्द्र और गुणचन्द्र ई० 1100

आचार्यहेमचन्द्र के बाद उनके प्रमुख शिष्य रामचन्द्र और गुणचन्द्र का स्थान है। आचार्य्य हेमचन्द्र के समान ये दोनों भी जैन धर्म के लब्धप्रतिष्ठित विद्वान् थे। वैसे रामचन्द्र गुणचन्द्र दो अलग व्यक्ति हैं किन्तु दोनों ने मिलकर नाट्यदर्पण नामक एक नाट्य विषयक ग्रन्थ की रचना की। इसलिए इन दोनों के नाम का उल्लेख प्रायः साथ ही साथ किया जाता है। गुणचन्द्र का अपना और कोई अलग ग्रन्थ नहीं पाया जाता किन्तु रामचन्द्र के अलग

भी बहुत ग्रन्थ पाये जाते हैं, जो प्रायः नाटक हैं। उन्हें प्रबन्धशतकर्ता कहा जाता है। इससे प्रतीत होता है कि उन्होंने 100 ग्रन्थों की रचना की थी। उनके 11 नाटकों के उद्धरण नाट्यदर्पण में पाये जाते हैं। अनेक दुर्लभ नाटकों के उद्धरण भी इसमें दिये गये हैं। जिनमें विशाखदत्त विरचित देवीचन्द्रगुप्तनाटक भी है। इस नाट्यदर्पण की रचना कारिका शैली में हुई है। उस पर वृत्ति भी ग्रन्थकार ने स्वयं लिखी है। ग्रन्थ में 4 विवेक हैं। इन्होंने रस को केवल सुखात्मक न मानकर दुःखात्मक भी माना है। आचार्य्य हेमचन्द्र के शिष्य होने के नाते यह गुजरात के सिद्धराज, कुमारपाल और अजयपाल तीन राजाओं के समय में विद्यमान थे।

रामचन्द्र को राजा अजय पाल ने क्रुद्ध होकर प्राण दण्ड दिलवा दिया। इस प्राण दण्ड के विषय में प्रबन्धकोष में ऐसा लिखा है कि राजा कुमारपाल के केवल एक पुत्री थी जिसका लड़का प्रतापमल्ल था। राजा वृद्ध हो गये और उन के दो ही उत्तराधिकारी हो सकते थे। एक उनका दौहित्र प्रतापमल्ल और दूसरा उनका छोटा भाई अजयपाल इस निर्णय के लिये कुमारपाल हेमचन्द्र के स्थान पर गये राजा के साथ उन का एक प्रिय जैन व्यापारी भी था। हेमचन्द्र ने जैन के नाते दौहित्र के हक्क में कहा पर व्यापारी ने अजयपाल के। पर अन्त में परिस्थिति वश अजयपाल ही उत्तराधिकारी बनाया गया। जब उत्तराधिकारी के विषय में परामर्श हो रहा था तो उस समय आचार्य्य का एक विद्यार्थी 'भालचन्द्र' वहाँ उपस्थित था। उस के द्वारा अजयपाल को मालूम हो गया कि आचार्य्य और उनके पट्टशिष्य रामचन्द्र ने उनका घोर विरोध किया है। उसी दिन से अजयपाल आचार्य्य और उनके परम स्नेही शिष्य रामचन्द्र का परम शत्रु हो गया। उसने आचार्य्य की किसी षड्यन्त्र द्वारा मृत्यु करवादी, जिन की आयु उस समय 84 वर्ष की थी। अचार्य्य की मृत्यु के ठीक 32वें दिन विष देकर कुमारपाल को भी समाप्त कर दिया

ग्रौर स्वयं राजा वन बैठा। ग्राचार्य्य का पट्टशिष्य, रामचन्द्र गुजरात देश का रहने वाला था। सिद्धराज के समय में इनकी दाहिनी ग्राँख जाती रही। उनके सहपाठी भालचन्द्र ने उनके विरुद्ध चुगली की कि ग्राप के उत्तराधिकारी बनने पर इस ने घोर विरोध किया है इस पर क्रुद्ध होकर ग्रजयपाल ने रामचन्द्र को बुला कर लोहे की तप्त चादर के ऊपर बिठा कर उन को मरवा डाला।

सागर नन्दी ई० 1100

मम्मट के बाद सागर नन्दी का स्थान है। यह काव्य-शास्त्र के नहीं ग्रपितु नाट्यशास्त्र के ग्राचार्य्य थे। धनंजय के दशरूपक ग्रन्थ के लगभग 100 वर्ष बाद इन्होंने नाटकलक्षणरत्नकोष नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की। इनका ग्रसली नाम केवल सागर था। परन्तु नन्दी वंश में उत्पन्न होने के कारण ये सागर नन्दी नाम से ही विख्यात हैं। इन्होंने ग्रपने ग्रन्थ के ग्रन्तिम श्लोक में ग्रपने ग्राधारभूत ग्राचार्य्यों का उल्लेख किया है। इस श्लोक से प्रतीत होता है कि (1) भरतमुनि के ग्रतिरिक्त (2) हर्षवार्तिक, (3) मातृगुप्त, (4) गर्ग, (5) ग्रश्मकुट्ट, (6) नखकुट्ट ग्रौर (7) बादरिका इन सात ग्राचार्य्यों के ग्राधार पर इस ग्रन्थ की रचना की। ग्रनेक स्थलों पर भरत के श्लोकों को ज्यों का त्यों उतार डाला है। दशरूपक के समान यह भी कारिका रूप में लिखा गया है।

वाग्भट ई० 1140

वाग्भट श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जैन थे। वाहट इनका प्राकृत नाम था। इनके पिता का नाम सोम था यह गुजरात के सोलंकी राजा जयसिंहसिद्धराज का महामात्य था।

---

1. रामचन्द्रादिशिष्याणां तप्तलोहविष्टरासन पातनया मारणं कृतम् = प्रबन्धकोषे

इनकी जीवन कथा बड़ी करुणापूर्ण है। इन्हें अपने इस महामात्व का मूल्य चुकाना पड़ा। इनकी एक पुत्री थी परमसुन्दरी और परम विदुषी और अपने पिता के सदृश कवयित्री प्रतिभाशालिनी। जब वह विवाह योग्य हुई तो बलात्कार इनसे छीनकर राजप्रासाद की शोभा बढ़ाने के लिए भेज दिया गया। न वाग्भट इसके लिए तैयार थे और न कन्या पर मजबूरन दोनों को राजा के सामने सिर झुकाना पड़ा। बिदाई के समय कन्या की इस उक्ति को जरा देखिये कैसी चमत्कारपूर्ण है। तबियत फड़क उठती है। राजप्रासाद के लिए प्रस्थान करते समय कन्या अपने[1] रोते हुए पिता को सान्त्वना देते हुए कहती है। व्याकरण प्रक्रिया के अनुसार दुष् धातु को गुण होकर दोष पद बनता है 'दुष्'[1] धातु के 'गुण' का परिणाम 'दोष' है इसी प्रकार हमारे सौंदर्य गुण का परिणाम यह अनर्थ है और अत्याचार रूप दोष है। इसलिए हे तात आप रोइये नहीं। यह तो हमारे कर्मों का फल है दुष् धातु के समान हमारा गुणं भी दोषजनक हो गया।

इन्होंने वाग्भटालंकार नामक अलंकार ग्रन्थ की रचना की। नेमि-निर्वाण महाकाव्य के रचयिता भी यही वाग्भट थे। यह संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान थे। वाग्भटालंकार के 5 परिच्छेद हैं जिनमें 260 उदाहरणों के श्लोक हैं। प्रायः ये श्लोक अनुष्टप् छन्दों में हैं। इस पर आठ टीकायें हैं जिनमें जिन-वर्द्धन सूर और सिंह देव गणि की टीकायें प्रसिद्ध हैं।[2] यह वाग्भट काव्यानुशासन के प्रणेता वाग्भट और अष्टांगहृदय के कर्ता वाग्भट से भिन्न थे।

रुय्यक ई० 1200

इसका विरचित अलंकारसर्वस्व अलंकार का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके पिता का नाम राजानक तिलक था। इसने साहित्य का अध्ययन

---

1. तात् वाग्भट ! मारोदिहि कर्मणां गति रीदृशी।
   दुष् धातोरिवास्मकं गुणो दोषाय केवलम्॥
2. इस पर चंदौसी समीपस्थ मई ग्राम वास्तव्य वेदाचार्य्यं पं० प्रेमनिधि शास्त्री कृत टीका परम प्रसिद्ध है।

अपने पिता से किया था और यह काश्मीर का रहने वाला था। इसने व्यक्तिविवेक तथा काव्यप्रकाश का खण्डन किया है। राजानक रुय्यक श्रीकण्ठमहाकाव्य के रचयिता मंख के गुरु थे; जो काश्मीर के राजा जयसिंह का मंत्री था। श्री कण्ठचरित के कई श्लोक अलंकारसर्वस्व की वृत्ति में मिलते हैं। इनके विरचित अन्य ग्रंथ—(1) अलंकारानुसारिणी (2) काव्यप्रकाश संकेत (3) नाटकमीमांसा (4) व्यक्तिविवेकविचार (5) श्रीकण्ठस्तव (6) सहृदयलीला (7) साहित्यमीमाँसा (8) हर्षचरित्रवार्तिक (9) अलंकारमंजरी (10) और अलंकार वार्तिक हैं।

अलंकारसर्वस्व—यह ग्रंथ ध्वनि मार्ग का अनुयायी है। इसमें प्राचीन अलंकारों के मतों का संग्रह है। इसमें काव्यप्रकाश से अधिक अलंकार हैं और उनका विचार भी विस्तृत है। इसमें भी सूत्र, वृत्ति और उदाहरण हैं। अलंकारसर्वस्व की वृत्ति के बिषय में सन्देह किया जाता है। इस ग्रन्थ के दो टीकाकारों की दो प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं। जिनमें प्रथम जयरथ है, जो काश्मीर का रहने वाला था और जिसने रुय्यक के बाद 50 वर्ष के भीतर ही अपनी विमर्शिनी नाम की टीका लिखी जो इस समय काव्य माला में मुद्रित है और दूसरी केरल के समुद्र-बन्ध की विरचित टीका है। जयरथ की टीका के पहले श्लोक में निज[1] शब्द के प्रयोग से रुय्यक का ग्रहण है पर समुद्रबन्ध पहले श्लोक में गुरु[2] पद के आने से मंख का ग्रहण करते हैं और कहते हैं कि मंख ने अपने गुरु के ग्रंथ की वृत्ति लिखी। इन दो टीकाओं के अतिरिक्त तीसरी टीका विद्याचक्रवर्त्ती की अलंकारसंजीवनी नाम से है।

---

1. निजालंकारसूत्राणां वृत्या तात्पर्यमुच्यते।
2. गुर्वलंकारसूत्राणां वृत्या तात्पर्यमुच्यते।

अरिसिंह और अमरसिंह ई० 1242

जिस प्रकार रामचन्द्र गुणचन्द्र दोनों एक ही गुरु के शिष्य थे और दोनों ने मिलकर नाट्यदर्पण की रचना की उसी प्रकार अरिसिंह और अमरसिंह दोनों एक ही गुरु जिनदत्त सूरि के शिष्य थे। उन दोनों ने मिलकर काव्यकल्पलता नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का विषय कवि शिक्षा है। कवि बनने के इच्छुक व्यक्ति किस प्रकार अपने लक्ष्य को सरलता से प्राप्त कर सकते हैं इन्हीं उपायों का वर्णन इसमें किया गया है। इस ग्रन्थ में 4 प्रतान हैं (1) छन्द : सिद्धि (2) शब्द-सिद्धि (3) श्लेषसिद्धि (4) और चतुर्थ प्रतान में अर्थसिद्धि के उपायों का प्रतिपादन किया गया है। इस पर चन्द्रविरचित कवि शिक्षा वृत्ति नाम की टीका है और दूसरी टीका मकरन्द नाम की है।

जयदेव ई० 1300

यह विदर्भ के कुण्डिनपुर के निवासी थे। इनके पिता का नाम महादेव और माता का नाम सुमित्रा था। इनका विरचित चन्द्रालोक नाम का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इनकी उपाधि पीयूष[1]वर्ष थी। चन्द्रालोक अनुष्टुप् छन्द में है। इसमें कवि-विरचित ही उदाहरण हैं। इसके 10 मयूख हैं और 350 श्लोक हैं। इस पर 6 टीकायें हैं, जिनमें प्रद्योतन भट्ट की चन्द्रालोकप्रकाश शारदागम, गागा भट्ट की राकागम, वैद्यनाथ पायगुण्ड की रमा नाम की टीकायें प्रसिद्ध हैं। हिन्दी में इसकी उल्था भाषाभूषण के नाम से हुई है।

शारदातनय ई० 1300

इसका विरचित भावप्रकाश नाम का नाट्यशास्त्र का ग्रंथ है। यह काश्यपगोत्री ब्राह्मण थे। इनका प्रपितामह लक्ष्मण पितामह

1. चन्द्रालोकमयं स्वयं वितनुते पीयूषवर्षः कविः।

कृष्ण और पिता भट्ट गोपाल था। भट्टगोपाल को शारदा की आराधना से यह पुत्र हुआ था। इसलिए इसका यह नाम शारदातनय रखा। इसने अपना निवास आर्यावर्त्त के मेरूत्तर के दक्षिण भाग में माठरपूज्या ग्राम बताया है। कोई मेरूत्तार को मेरठ और अन्य मद्रास प्रान्त में विद्यमान उत्तार मेरु मानते हैं। भट्टगोपाल के पिता ने वाराणसी में महादेव की आराधना की थी। शारदातनय संगीत का भी आचार्य था। इसका प्रथम ग्रंथ शारदीयसंगीत है। इनका नाटक गुरु दिवाकर काशीवासी था। भावप्रकाश को शारदा-तनय ने भोजराज के शृंगारप्रकाश के आधार पर रचा था। भावप्रकाश में कोहल, मातृगुप्त, सुबन्धु आदि नाट्याचार्यों का उल्लेख मिलता है। इसमें दस अधिकार हैं। इसके नवम अधिकार में नृत्य के भेदों का वर्णन है। इस ग्रंथ की कोई टीका उपलब्ध नहीं होती।

भानुदत्त ई० 1400

इनकी विरचित रसमंजरी और रसतरंगिणी हैं। इन दोनों पुस्तकों में अपने विरचित गीतगौरीपति काव्य के अनेक श्लोक मिलते हैं। इनके पिता का नाम गणनाथ था। भानुदत्त शैव थे। इन्होंने अपने सब ग्रंथों के आरम्भ में शिव की ही वन्दना की है। इनकी जन्मभूमि विदेहभू थी और यह मैथिल थे।

रसमंजरी के तीन भागों में केवल नायिका भेद ही सविस्तार वर्णन है। शेष ग्रंथ में दूती, शृंगारादि का विस्तृत वर्णन है। इस पर गोपालाचार्य की विलास, शेषचिन्तामणि की परिमल और नागेश की प्रकाश टीकायें प्रसिद्ध हैं।

रसतरंगिणी—इस अलंकार ग्रंथ में ८ तरंग हैं। इसमें वह विषय है जो रसमंजरी में नहीं है। इसमें रस, स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारीभावादि का तथा शृंगाररस का सविस्तर वर्णन

है। इस पर 10 टीकायें हैं। इन दोनों ग्रन्थों में कवि निर्मित ही उदाहरण दिये गये हैं।

विद्याधर ई० 1400

विद्याधर का एकमात्र ग्रन्थ एकावली है। इसमें 8 उन्मेष या अध्याय हैं। यह ग्रन्थ काव्यप्रकाश और अलंकारसर्वस्व के आधार पर बना है। उसके ऊपर 1400 ई० में यानी इन्हीं के समकालीन सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने तरला नामक विद्वत्तापूर्ण टीका लिखी है। इसीलिए मल्लिनाथ ने अपनी काव्य टीकाओं में एकावली के काव्य लक्षण ही प्रायः उद्धृत किये हैं। एकावली की एक मुख्य विशेषता यह है कि इसमें जितने उदाहरण हैं वह स्वयं विद्याधर के बनाये हुए हैं। उन्होंने स्वयं अपने आश्रयदाता उत्कलाधिपति नरसिंहदेव[1] की स्तुतिरूप में रचना की है।

विद्यानाथ ई० 1400

इन्होंने अलंकार शास्त्र पर प्रतापरुद्रयशोभूषण नामक ग्रन्थ लिखा है। उसमें कारिका, वृत्ति तथा उदाहरण तीन भाग हैं। इनके सारे उदाहरण आंध्र प्रदेश के काकलीय वंश के राजा प्रतापरुद्र[2] की स्तुति में स्वयं विद्यानाथ के बनाये हुए हैं। यह प्रतापरुद्र आन्ध्र प्रदेश के राजा थे। इनकी राजधानी वारंगल जिसको एकशिला भी कहते हैं, थी। विद्यानाथ के प्रतापरुद्रयशोभूषण के आदर्श पर ही कदाचित् हिन्दी के कवि भूषण ने शिवराजभूषण नामक अलंकार ग्रन्थ की हिन्दी में रचना की थी। इस अलंकार ग्रन्थ की दक्षिण

---

1 एवं विद्याधरस्तेषु कान्तासम्मितलक्षणम्।
करोमि नरसिंहस्य चाटुश्लोकानुदाहरन्॥

2 प्रतापरुद्रदेवस्य गुणानाश्रित्य निर्मितः।
अलंकारप्रबन्धोयं सन्त; कर्णोत्सवोऽस्तु वः॥

में बड़ी प्रसिद्धि है। इसमें ९ प्रकरण हैं। इस पर मल्लिनाथ के पुत्र कुमारस्वामी की रत्नापण नाम की टीका है। दूसरी रत्नषाण टीका भी है परन्तु वह अधूरी ही उपलब्ध है।

सिंघ भूपाल ई० 1400

इनका विरचित रसार्णवसुधाकर नाम का अलंकार ग्रन्थ है। यह दक्षिण के व्यंकटगिरि का राजा था। मल्लिनाथ और उसका पुत्र कुमार स्वामी दोनों ही अपने ग्रन्थों में इसका निर्देश करते हैं। इनके पिता का नाम अनन्त और माता का नाम अन्नमाम्बा था। यह राजा विद्वानों का आश्रयदाता था। इसका विरचित नाटक परिभाषा और सिंघभूपालीय अलंकार, ये दो ग्रन्थ माने जाते हैं।

रसार्णवसुधाकर=यह नाट्यशास्त्र का ग्रन्थ भोज के शृंगार प्रकाश और शारदातनय के भावप्रकाश के आधार से रचा गया है। रस और नाट्य के प्रकरणों में भरत, रुद्रभट्ट और दशरूपक आदि प्रधान ग्रन्थकारों के ग्रन्थों का भी परिचय मिलता है। इसमें अनेक नाटकों के नाम निर्देश हैं।

विश्वनाथ ई० 1400

इनका विरचित अलंकार का अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ साहित्यदर्पण है। मम्मट के बाद इन्हीं का नाम अलंकार शास्त्र में आता है। जितना प्रचार पठन पाठन में इसका हुआ उतना और किसी साहित्य ग्रन्थ का नहीं। यह साहित्य का सर्वांग पूर्ण ग्रन्थ है। इसके आजाने से और किसी अन्य ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं रहती। यह तक्र के समान है और बाकी तक्र से बनी हुई लस्सी के समान। इनके पिता का नाम महाकवि चन्द्रशेखर था जो विद्वान् और उत्कल के राजा के मन्त्री भी थे। इन्होंने पुष्पमाला और भाषार्णव दो ग्रन्थ लिखे जो उपलब्ध हैं।

इनके पितामह महापात्र राघवानन्द और वृद्ध पितामह नारायण थे। विश्वनाथ उत्कल (कलिंग) के निवासी और गौड़ ब्राह्मण थे। विश्व नाथ की उपाधि 'सन्धिविग्रहिमहापात्र' थी अर्थात् सुलह और लड़ाई का महकमा (Port folio) इसके अधीन था और यह राजा का महा पात्र अर्थात् (महा मन्त्री[1] भी था) अलाउद्दीन[2] खिलजी के समय इन्होंने साहित्यदर्पण की रचना की। यह वैष्णव[3] थे और 14 भाषाओं के जानने वाले थे। इनका साहित्य दर्पण काव्य शास्त्र का विश्वकोष है। मम्मट के ग्रन्थ में मौलिकता का साम्राज्य है जबकि साहित्य दर्पण अधिकांश में संग्रह ग्रन्थों की श्रेणी में है।

इसका दृश्य काव्य नाट्शास्त्र धनञ्ज्य के दशरूपक पर अवलम्बित है। इसी प्रकार रसध्वनि और गुणीभूतव्यंग का अधिकांश भाग ध्वन्यालोक और काव्य प्रकाश से लिया गया है। अलंकार प्रकरण काव्यप्रकाश और रुय्यक के अलंकारसर्वस्व से। रुय्यक का तो विश्वनाथ ने दासवत अनुकरण किया है। साहित्यदर्पण में 10 परिच्छेद हैं। इनमें विश्वनाथ विरचित श्लोक 20 के करीब हैं। बाकी उदाहरण अन्य ग्रन्थों से लिये गये हैं। इस पर केवल चार टीकायें हैं। जिनमें रामचरणतर्कवागीश की ई० 1701 में विरचित विवृति नाम की टीकाप्रसिद्ध है। इनके विरचित अन्य ग्रन्थ ये हैं—(1) राघवविलासकाव्य (2) कुवलयाश्वचरित (प्राकृत काव्य) (3) प्रभावतीपरिणयनाटिका (4) प्रशस्तिरत्नावलि (5) चन्द्रकला नाटिका (6) नरसिंहविजयकाव्य (7) और काव्य प्रकाश की टीका

---

1. पात्रं स्रुवादौ पर्णे च भाजने राजमन्त्रिणि। मेदिनी कोशे
2. सन्धौ सर्वस्वहरणं विग्रहे प्राणनिग्रहः।
   अलावद्दीन-नृपतौ न सन्धिर्नच विग्रहः।

   साहित्य दर्पणे ।4।14
3. श्रीमन्नारायण चरणारविन्दमधुव्रत।

काव्यप्रकाशदपण है। काव्यप्रकाश की टीकादीपिका का कर्ता चण्डी-दास विश्वनाथ के पितामह का कनिष्ठ भ्राता था।

रूपगोस्वामी ई० 1600

इनका विरचित उज्वलनीलमणि नाम का अलंकार ग्रन्थ और नाटकचन्द्रिका नाम का नाट्य ग्रन्थ है। पद्यावली यह एक स्तोत्र काब्य और सुभाषितकाव्य है। यह बंगाल के प्रसिद्ध वैष्णव मत प्रवर्तक चैतन्यमहाप्रभु के शिष्य थे। इनके वंश का मूल पुरुष 'सर्वज्ञ कर्णाट का राजा या। इसके वंश में पाँच पीढ़ी पर कुमार नामक व्यक्ति हुआ। उसके तीन पुत्र थे। (1) सनातन (2) रूप और (3) वल्लभ। रूप और सनातन दोनों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इसलिए वह जाति च्युत हो गये। परन्तु चैतन्य देव ने उन्हें पुनः हिन्दू बनाया था इसी रूप का आगे चलकर नाम हुआ रूपगोस्वामी। इनके बिरचित ग्रन्थ (1) विदग्धमाधव (2) उत्कलि कावल्लरी (3) उज्वलनीलमणि और (4) वैष्णवतोषिणी व्या-करण ग्रन्थ है। उज्जवलनीलमणि में इसके रचित और भी ग्रन्थ निर्दिष्ट हैं।

नाटकचद्रिका भरत नाट्यशास्त्र के आधार पर लिखी गई है। साहित्यदर्पण में प्रतिपादित नाट्य प्रकरण भरत नाट्य शास्त्र के विरुद्ध होने के कारण हेय है नाट्यचन्द्रिका में 8 प्रकरण हैं।

कविकर्णपूर ई० 1600

इनका विरचित अलंकार ग्रन्थ 'अलंकार कौस्तुभ' है। यह कवि कर्णपूर पहले परमानन्ददाससेन के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके पिता का नाम शिवानन्द सेन था। इनका गुरु श्रीनाथ था। यह बंगाल के वैद्यकुल में उत्पन्न हुए थे। यह वैष्णव थे। इनके पिता शिवानन्द सेन चैतन्यदेव के शिष्य थे। कवि वर कर्णपूर विरचित

चैतन्यचन्द्रोदयनाटक ई० 1572 का है। इस नाटक की भूमिका में कहा है कि यह कवि कर्णपूर नदिया के काँचनपल्ली में ई० 1524 में जन्मे थे। इनका विरचित गौराङ्गगणोद्देशदीपिका ई० 1576 की है। इनका पुत्र कविचन्द्र बड़ा भारी कवि था। कवि कर्णपूर विरचित अन्य ग्रन्थ 'आनन्दवृन्दावन चम्पू' और उसकी टीका चमत्कारचन्द्रिका, बृहत्कृष्णगणोद्देशदीपिका और वर्णप्रकाश हैं। वर्णप्रकाश कोशग्रन्थ है और अमरमाणिक्य के पुत्र राजधर के लिए लिखा था।

अलंकारकौस्तुभ –इसके 10 किरण हैं। यह रूप गोस्वामी के उज्ज्वलनीलमणि से अधिक विस्तृत ग्रन्थ है। इसमें वैष्णव धर्म का उतना प्रकाश नहीं है। तथापि प्रमुख उदाहरण श्रीकृष्ण की स्तुति के ही हैं। इसमें काव्यप्रकाश का अनुकरण है। इस पर 4 टीकायें हैं जिनमें स्वविरचित किरण, विश्वनाथ चक्रवर्ती विरचित सारबोधिनी और वृन्दावनचन्द्रतर्कालंकारचक्रवर्ती विरचित दीधिति-प्रकाशिका प्रसिद्ध हैं।

अप्पयदीक्षित ई० 1600

इनके विरचित वृत्तिवार्तिक, चित्रमीमांसा और कुवलयानन्द नाम के तीन अलंकार ग्रन्थ हैं। अद्वैतसिद्धि के रचयिता मधुसूदन सरस्वती ने इन्हें सर्वतन्त्र स्वतन्त्र कहा है। अप्पय दीक्षित बड़े भारी लेखक थे। इन्होंने १०४ ग्रंथ लिखे हैं। इनके पिता रंगराजअध्वरी थे और पितामह आचार्यदीक्षित थे। इनका गोत्र भारद्वाज था। और यह द्रविड़ देश में काँची के रहने वाले थे। इन्होंने ७२ साल की आयु भोगी। सिद्धान्तकौमुदी के कर्ता भट्टोजीदीक्षित अपनी सिद्धान्त कौमुदी की रचना के बाद काशी से दक्षिण में अप्पय दीक्षित के पास अध्ययन करने के लिए गए थे और वहाँ व्यंकटपति

के कहने पर भट्टोजीदीक्षित ने शब्दकौस्तुभ ग्रन्थ लिखा जिसमें अपने गुरु अप्पयदीक्षित की वन्दना की है। अप्पय दीक्षित ने वेदान्त-न्याय मीमाँसा और कई भिन्न भिन्न विषयों पर अनेक विद्वत्तापूर्ण आकर ग्रन्थ लिखे।

वृत्तिवार्तिक— इसमें दो परिच्छेद हैं। इसमें शब्द के अभिधा और लक्षणा व्यापार का वर्णन है।

चित्रमीमाँसा— इसमें अर्थचित्र का ही विशेष रूप से प्रतिपादन है और उपमालंकार पर निर्भर 22 अलंकार बताये हैं। यह अलंकार प्रकरण अतिशयोक्ति तक हैं। इस पर धरानन्द की सुधा और बालकृष्ण पायगुण्ड की गूढ़ार्थ प्रकाशिका टीकायें प्रसिद्ध हैं।

कुवलयानन्द इनका सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है जिसका आधार चन्द्रालोक है। चन्द्रालोक से इसमें 24 अलंकार अधिक हैं। कुवलयानन्द की 9 टीकायें हैं जिनमें आशाधर की दीपिका, वैद्यनाथ तत्सत् की अलंकारचन्द्रिका, नागोजी भट्ट की अलंकारसुधा और गंगाधर वाजपेयी की रसिकरंजिनी हैं। भीमदेव ने कुवलयानन्द खण्डन नाम का एक ग्रन्थ लिखा था। पंडितराज जगन्नाथ ने भी कुवलयानन्द का खण्डन किया है।

केशवमिश्र ई० 1600

इनका विरचित अलंकारशेखर नाम का अलंकार ग्रन्थ है। इन्होंने यह ग्रन्थ धर्मचन्द्र के पुत्र माणिक्यचन्द्र राजा के कहने से लिखा था। यह माणिक्यचन्द्र काँगड़ा (त्रिगर्त) देश का स्वामी था। इस केशवमिश्र ने अन्य 7 ग्रन्थों की रचना की थी।

अलंकारशेखर—यह ग्रन्थ कारिका, वृत्ति और उदाहरण के रूप में है। केशवमिश्र के कथनानुसार कारिका का रचयिता शौद्धोदनि (भगवान् बुद्ध) था। वृत्ति केशवमिश्र की है और

उदाहरण कई ग्रन्थों से लिए गए हैं। इसमें 8 रत्न और 12 मरीचियाँ हैं।

पण्डितराज जगन्नाथ ई 1620

यह तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मेरु[1]भट्ट और माता का नाम लक्ष्मी था। इनके पिता ने ज्ञानेन्द्रभिक्षुक नामक विद्वान् से वेदान्त शास्त्र, महेन्द्र पण्डित से न्याय और वैशेषिक शास्त्र, खण्डदेव से पूर्वमीमांसा और वीरेश्वर पण्डित से महाभाष्य पढ़ा था। इसके अतिरिक्त वह वेदादि अन्य शास्त्रों के भी ज्ञाता थे। पण्डितराज ने प्रायः इन्हीं से अध्ययन किया और शेषवीरेश्वर[2] से भी कुछ पढ़ा था। पण्डित राज जगन्नाथ दिल्ली सम्राट शाहजहाँ[3] और दाराशिको के प्रेम पात्र थे। शाहजहाँ ने इन्हें पण्डितराज की उपाधि प्रदान की थी। क्योंकि मुगलदरवार के अन्दर शास्त्रार्थ में इन्होंने अपनी तर्क सत्ता से कई मौलवी और काजी परास्त किये थे। शाहजहां ने प्रसन्न होकर कुछ मांगने को कहा तो पण्डित राज ने उनके महल में रहने वाली एक परम सुन्दरी लवंगी से विवाह करने की इच्छा प्रकट की जिसे शाहजहाँ ने स्वीकार कर लिया।

पण्डित राज का विवाह लवंगी नाम की यवन रमणी से हुआ दाराशिको के मारे जाने पर यह पहले मथुरा फिर काशी चले गये। काशी में इनका अप्पयदीक्षित ने घोर विरोध किया। यवनीसंसर्ग-दूषित कह कर पुकारा जिस पर पण्डित राज ने भी मुखतोड़ जवाब दिया। एक दिन अपनी रमणी के साथ यह काशी में गंगा के किनारे

---

1. पाषाणादपि पीपूषं स्यन्दते यस्य लीलया।
   तं वन्दे मेरुभट्टाख्यं लक्ष्मीकान्तं महागुरुम् ॥
2. अस्मद्गुरु पण्डितवीरेश्वरणाम। मनोरमाकुचमर्दन नाम्नी टीकायाम्।
3. दिल्ली वल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः। भामिनीविलासे।

सो रहे थे। उनकी श्वेत शिखा चादर से बाहिर थी। उसे देखकर प्रातः काल गंगा स्नान को जा रहे अप्पयदीक्षित सहसा बोल उठे अरे मौत[1] तुम्हारे सिर पर खड़ी है तुम इस प्रकार निश्शंक कैसे सो रहे हो। इतना सुनते ही पण्डित राज ने मुख से कपड़ा हटाया तो पण्डित राज को देखकर अप्पय दीक्षित घबरा गये और बोले आप आनन्द से सोयें आपकी माता भगवती गंगा आपके पास जाग रही है। पण्डित राज बड़े भारी अभिमानी[2] थे। इन्होंने (1) भामिनीविलास (2) आसफविलास (3) गंगालहरी (4) करुणालहरी (5) अमृत लहरी (6) लक्ष्मीलहरी (7) जगदाभरण (8) प्राणाभरण (9) सुधालहरी (10) यमुनावर्णनचम्पू (11) मनोरमाकुचमर्दन (12) चित्रमीमाँसाखण्डन और (13) रसगंगाधर ग्रन्थ लिखे।

रसगंगाधर साहित्य का एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसके समस्त उदाहरण जगन्नाथ के अपने रचे हुए हैं। इसमें उत्तरालंकार तक ही वर्णन है। शंकर के पंचानन के अनुसार सम्भवतः ग्रन्थकार की इच्छा इसे पांच आननों में पूर्ण करने की थी। किन्तु प्रकाशित ग्रन्थ में द्वितीय आनन भी अपूर्ण है। इस पर वैय्याकरणशिरोमणिनागेशभट्ट की गुरुमर्मप्रकाशिका सबसे प्राचीन प्रसिद्ध टीका है। वस्तुतः यह टीका नहीं टिप्पणीमात्र है यह प्रायः मूल का खण्डन करती हैं। इस प्रकाशिका टिप्पणी से मालूम होता है कि पण्डित राज़ का दोष बतलाना ही नागेश भट्ट का लक्ष्य था। मथुरानाथभट्ट (जयपुर वाले) ने अपनी भूमिका में नागेश कृत टीका के बहुत से दोषों का संग्रह किया है।

---

1. किं निश्शंकं शेषे शेषे वयसि त्वमागते मृत्यौ।
   अथवा सुखं शयीथा निकटे जागर्ति जान्हवी भवतः॥

2. आमूलाद् रत्नसानोर्मलयवलियतादाच कूलात् पयोधे-
   र्यावन्तः सन्ति काव्यप्रणयनपटवस्ते विशंकं वदन्तु
   मृद्वीका मध्यनिर्यन् मसृणरसझरी माधुरीभाग्यभाजां
   वाचामाचर्यतायाः पदमनुभवितुं कोऽस्ति धन्यो मदन्यः।

पण्डितराज अपनी स्त्री के साथ काशी में एक घाट पर बैठे थे और उन्होंने गंगा की स्तुति में गंगा लहरी के पदों की रचना की। एक-एक पद्य पर गंगा एक-एक सीढ़ी ऊपर आ रही थी। अन्तिम पद्य में पण्डित राज और उनकी यवन पत्नी दोनों भगवती गंगा की गोद में चले गये। इस अदभुत दृश्य से काशी के समस्त विद्वान् चकित रह गये। कीथ महोदय ने अपने विपुल काव्य संस्कृत साहित्य के इतिहास में पण्डित राज जगन्नाथ जैसे प्रखर कवि का उल्लेख ही नहीं किया यह बड़ी आश्चर्य की बात है।

नरसिंह कवि ई० 1800

इनका विरचित नंजराजयशोभूषण नाम का अलंकार ग्रन्थ है। यह मैसूर के राजा चिक्क कृष्णराज के मन्त्री नंजराज का आश्रित था। इसका पिता सनगर ब्राह्मण था और भारी विद्वान् था। इसके धर्म गुरु योगानन्द सन्यासी थे। इस नरसिंह कवि ने अपने को नवकालिदास कहा है।

नंजराजयशोभूषण :—यह ग्रन्थ प्रतापरुद्रयशोभूषण का अनुकरण है। इसमें ७ विलास हैं। कवि विरचित उदाहरणों में नंजराज का यश वर्णन है।

आशाधर भट्ट ई० 1800

आशाधर भट्ट ने अलंकार दीपिका[1] ग्रन्थ के आरम्भ में इस प्रकार अपना परिचय दिया है कि यह रामजी भट्ट के पुत्र और धरणी धर के शिष्य थे। इन्होंने अलंकार के तीन ग्रन्थ लिखे हैं। (1)

---

१. शिवयोस्तनयं नत्वा गुरुं च धरणीधरम्।
आशाधरेण कविना रामजीभट्ट सूनुना॥
अलंकारदीपिका।

कोविदानन्द (२) त्रिवेणिका (३) और तीसरा अलंकारदीपिका। कोविदानन्द और त्रिवेणिका यह दोनों शब्द शक्ति के विषय पर हैं। त्रिवेंणिका, अभिधा, लक्षणा और व्यंजना इन तीनों वृत्तियों का निरूपण होने से इसे त्रिवेणिका कहा है। इनका तींसरा ग्रन्थ अलंकारदीपिका है। यह अप्पय दीक्षित के कुवलयानन्द के आधार पर लिखा गया है। इसमें इन्होंने १२५ अलंकारों की संख्या लिखी है।

—:o:—